खण्ड – 4 : सिद्धान्त और वाद

इकाई – 4 : रूपवाद

इकाई की रूपरेखा

4.4.0. उद्देश्य
4.4.1. प्रस्तावना
4.4.2. रूप और रूपवाद
    4.4.2.1. रूप का अर्थ
    4.4.2.1. रूपवाद का अर्थ
4.4.3. रूपवाद का उद्भव और विकास
    4.4.3.1. रूसी रूपवाद
    4.4.3.2. प्राग सर्कल और संरचनावाद
    4.4.3.3. बाख़्तिन सर्कल
    4.4.3.4. नई समीक्षा
    4.4.3.5. शिकागो संप्रदाय
4.4.4. रूपवादी पद्धति
4.4.5. रूपवाद के मुख्य तत्त्व और संकल्पनाएँ
    4.4.5.1. रूपवाद : साहित्य का विज्ञान
    4.4.5.2. काव्य-ध्वनि की स्वतन्त्रता
    4.4.5.3. रूप की नई परिभाषा
    4.4.5.4. कथानक और साहित्यिक विकास
    4.4.5.5. कविता का रूपवादी स्वरूप
    4.4.5.6. साहित्यिकता
    4.4.5.7. विपरिचयकरण
4.4.6. पाठ का सारांश
4.4.7. उपयोगी सन्दर्भ
    4.4.7.1. हिन्दी की पुस्तकें
    4.4.7.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें
    4.4.7.3. इन्टरनेट स्रोत
4.4.8. अभ्यास के लिए प्रश्न

4.4.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

4.4.0.1. रूप और रूपवाद का अर्थ जान पाएँगे।

4.4.0.2. रूपवाद के उद्भव और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।

4.4.0.3. रूपवाद की मुख्य अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे।

4.4.0.4. रूपवाद की विभिन्न शाखाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

4.4.1. प्रस्तावना

पाश्चात्य साहित्य चिन्तन के अन्तर्गत इस खण्ड की पिछली इकाइयों में आप स्वछन्दतावाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद और अस्तित्ववाद के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप एक और महत्त्वपूर्ण पाश्चात्य साहित्यिक सिद्धान्त 'रूपवाद' के बारे में पढ़ेंगे।

बीसवीं सदी में पाश्चात्य जगत् में अनेक चिन्तन धाराओं का उद्भव हुआ, जिनका विश्व के कला और साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। रूपवाद का जन्म रूस में हुआ लेकिन यह इंग्लैंड और अमेरिका सहित पूरी दुनिया में कई नवीन सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों के प्रवर्तन में सहायक रहा है। स्वयं रूपवाद कोई संगठित कला-आन्दोलन नहीं था। इसके भीतर कई उपधाराएँ सक्रिय थीं। मार्क्सवाद या अस्तित्ववाद की तरह इसका कोई विशेष दार्शनिक आधार भी नहीं था। वस्तुत: रूपवाद का उदय ही साहित्येतर सिद्धान्तों के अस्वीकार के साथ हुआ था। इसने कृति की स्वायत्तता पर बल देते हुए साहित्य के अध्ययन और मूल्यांकन में साहित्यिक तत्त्वों को ही आधार बनाया। रूपवाद साहित्यिक कृति के दो आधारभूत तत्त्वों – वस्तु और रूप में से वस्तु की पूर्ण उपेक्षा करते हुए रूप-तत्त्व को ही महत्त्व प्रदान करता है। रचना की 'साहित्यिकता' की खोज आलोचना और अनुसंधान का मुख्य कार्य घोषित किया गया। रचना के गठन की प्रविधियाँ और भाषा सम्बन्धी उपकरणों को उसके विश्लेषण की कसौटी माना गया है। रूप पर अतिशय ज़ोर तथा वस्तु की उपेक्षा अन्तत: इस अद्भुत साहित्यिक उपागम के अन्त का माध्यम बने। लेकिन इसकी जड़ें साहित्य-समीक्षा में इतनी गहरी हैं कि आज भी साहित्य-सिद्धान्तकार 'रूप' की पूर्ण उपेक्षा करके कोई नया साहित्य-सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं कर सकते।

4.4.2. रूप और रूपवाद

जब हम किसी साहित्यिक कृति के 'रूप' की बात करते हैं तो हमारा आशय विषय-वस्तु को छोड़कर उसकी संरचना और उन प्रविधियों और शैली आदि से होता है जिनसे उसकी रचना हुई है। रूप का एक अर्थ उसकी विधा – कविता, कहानी, नाटक या उपन्यास आदि के रूप में भी लिया जाता है।

साहित्य का विद्यार्थी यह जानता है कि वस्तु और रूप के योग से कलाकृति का निर्माण होता है। रूप और वस्तु का सम्बन्ध अभिन्न और अन्योन्याश्रित है। यद्यपि ये दोनों अलग-अलग हैं लेकिन कलाकृति के लिए दोनों की सम्बद्धता और एकता ज़रूरी होती है। साहित्य के इतिहास में अनेक प्रवृत्तियाँ प्रचलित रही हैं जिनमें रूप

और वस्तु के अन्योन्याश्रित स्वरूप की उपेक्षा की गई है। आइए इस पृष्ठभूमि में रूपवाद को समझने का प्रयास करें।

4.4.2.1 रूप का अर्थ

साहित्यिक रचना के दो पक्ष होते है – अन्तर्वस्तु या वस्तु और रूप। जो विचार, भाव और संदेश लेखक अपनी रचना में अभिव्यक्त करता है उसे रचना की अन्तर्वस्तु कहा जाता है। जिस ढंग से लेखक अपने इन विचारों, भावों और संदेशों को व्यक्त करता है वह रचना का रूप है अर्थात् उसकी भाषा-शैली, शब्द-योजना और आन्तरिक गठन रचना के रूप का निर्माण करते हैं। रूप के अन्तर्गत वे सभी युक्तियाँ और उपकरण आते हैं जिनका प्रयोग कवि या लेखक अपने प्रस्तुत विचारों और भावों को खोजने, विकसित करने तथा उन्हें सार्थक रूप से अभिव्यक्त करने के लिए करता है। रूप और वस्तु अभिन्न हैं, लेकिन उनका विश्लेषण अलग-अलग किया जा सकता है।

किसी भी रचना के पाठ में हम उसके शब्दों और उनके अर्थ पर ध्यान देते हैं। हम देखते हैं कि उस रचना की संरचना का गठन किस तरह हुआ है। उसमें वाक्यों और अभिव्यक्तियों का स्वरूप क्या है। उसके विभिन्न अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है। रचना की अन्तर्वस्तु के साथ उसके मूड और टोन की संगति कैसी है। विषय-वस्तु के विकास में तारतम्य और भाषा का प्रवाह भी हमारे विचार का विषय होता है। हम देखते हैं कि किसी साहित्यिक कृति में कुछ शब्दों का विशेष अर्थों में प्रयोग होता है। ऐसे संकेतों और मिथकों का प्रयोग होता है जिनका अन्तर्निहित अर्थ गहरा होता है। इन सब पक्षों के सामंजस्य से रचना एक आकार प्राप्त करती है, एक रूप ग्रहण करती है। इसी से उसका अपना विशिष्ट और निराला अस्तित्व प्रकट होता है। अत: 'रूप' साहित्यिक रचना का आधारभूत ढाँचा है। रूप कृति की विधा के बारे में सूचित करता है और कृति के प्रारूप और अन्तर्वस्तु के मध्य संरचनात्मक अन्त:क्रिया में प्रकट होता है, जिससे अन्तत: उस रचना का अर्थ ग्रहण किया जाता है।

4.4.2.1. रूपवाद का अर्थ

सामान्य अर्थ में, कभी-कभी तिरस्कारपूर्ण अर्थ में भी, रूपवाद का अभिधान किसी भी ऐसी कलाकृति के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें विषयवस्तु की तुलना में रचना की विधियों और साज-सज्जा पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। बाहरी रूपाकार पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण कलाकृति के मूल तत्त्व अर्थात् विषयवस्तु की उपेक्षा कर दी जाती है या उसे एक गौण तत्त्व मान लिया जाता है। साहित्यिक इतिहास के प्रत्येक काल-खण्ड में साहित्य-समीक्षकों और चिन्तकों ने कला और साहित्य के रूपात्मक पहलुओं पर बार-बार ध्यान दिया है। बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में साहित्य और समालोचना में रूप पर विशेष बल देने की नई चेतना का प्रस्फुटन हुआ। कृति के रूप पक्ष पर अत्यधिक ध्यान देने के कारण इस प्रवृत्ति को रूपवाद कहा जाता है।

रूसी रूपवाद एक ऐसा सुविधाजनक और अस्पष्ट नाम है जो आकस्मिक तौर पर मिले हुए आलोचकों के समूह के लिए रूढ़ हो गया है। इस समीक्षा-पद्धति का संगठन ऐतिहासिक और भौगोलिक रूप से बिखरे हुए

आधारों पर हुआ है। अलग-अलग समूहों के रूप में विकसित इस पद्धति के आलोचकों में अनेक मुद्दों पर सहमति होते हुए भी पर्याप्त मतभेत पाए जाते हैं। मॉस्को समूह इस विचार का प्रस्ताव करता है कि कविता अपने सौन्दर्यगत प्रकार्य में भाषा है। पीटर्सबर्ग समूह का दावा है कि काव्यात्मक अभिप्राय हमेशा भाषायी सामग्री को प्रकट नहीं करते हैं। मॉस्को समूह तो मानता है कि कलात्मक रूपों के विकास के आधार सामाजिक होते हैं, लेकिन पीटर्सबर्ग समूह के आलोचक रूपों की पूर्ण स्वायत्तता पर ज़ोर देते हैं। रूस की साम्यवादी क्रान्ति के बाद सोवियत संस्थाओं में रूसी रूपवादियों को समाहित कर लिए जाने के बाद रूसी रूपवाद की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ा और ऐसे अनेक वैचारिक केन्द्र उभरे जिन्होंने रूपवाद पर अपना-अपना दावा पेश किया।

रूसी रूपवादी आन्दोलन से आरम्भ होकर यह चेतना यूरोपीय आधुनिकतावाद, नई समीक्षा, शैलीविज्ञान, संरचनावाद और नव-अरस्तूवाद आदि समीक्षा-पद्धतियों में विभिन्न रूपों में प्रकट हुई है। साहित्य की तकनीक और विधियों पर अतिशय बल देने की प्रवृत्ति के कारण प्रारम्भ में रूपवादी आन्दोलन के विरोधी 'रूपवाद' शब्द का प्रयोग एक अनादर सूचक अर्थ में करते थे। आगे चलकर इसने एक विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में अपनी पहचान स्थापित की।

4.4.3. रूपवाद का उद्भव और विकास

यूरोपीय महाद्वीप में रूपवाद का उद्भव प्राग और मॉस्को के बौद्धिक समूहों की गतिविधियों से हुआ। इन समूहों में सक्रिय लेखकों में रोमन याकॉब्सन, बोरिस आईकेनबॉम और विक्तोर श्क्लोव्स्की का योगदान महत्त्वपूर्ण है। रूपवाद का कोई एक संप्रदाय नहीं था। इसके अन्तर्गत कई अलग-अलग उपागमों को एक साथ मिलाया गया है। इनमें से कई उपागमों के विचार आपस में नहीं मिलते हैं। व्यापक अर्थों में रूपवाद अमेरिका और ब्रिटेन में द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति से लेकर 1970 के दशक तक साहित्यिक अध्ययन और समीक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उपागम रहा है। 'नई समीक्षा' के आलोचकों – आई.ए. रिचर्ड्स, जॉन क्रो रैंसम, सी.पी. स्नो और टी.एस. एलियट आदि के लेखन में रूपवादी आग्रह स्पष्टता से प्रकट हुए हैं।

यद्यपि 'नई समीक्षा' और 'रूसी रूपवाद' के सिद्धान्तों में बहुत समानता है, फिर भी दोनों धाराओं का विकास अलग-अलग हुआ है इसलिए उन्हें एक जैसा नहीं माना जाना चाहिए। सच तो यह है कि दोनों धाराओं के आलोचकों में अपनी-अपनी धारा के भीतर ही अनेक मतभेद दिखाई देते हैं।

ओपोयाज़ का पीटर्सबर्ग के 'द स्टेट इंस्टीट्यूट फॉर द हिस्ट्री ऑफ आर्ट्स में विलय हो गया। मॉस्को सर्कल को मॉस्को में 'द स्टेट अकेडमी फॉर द स्टडी ऑफ द आर्ट्स' का भाग बना दिया गया। याकॉब्सन और बोगातीरेव पहले ही इसे छोड़कर प्राग में अपना नया समूह बना चुके थे। रूसी रूपवाद की आन्तरिक विविधता उसके भौगोलिक और राजनीतिक उतार-चढ़ावों से ही नहीं बल्कि इसके प्रयोक्ताओं की सैद्धान्तिक बहुलता से भी प्रकट होती है। अपने एक महत्त्वपूर्ण लेख 'रूपात्मक विधि का प्रश्न' में विक्तोर ज़िरमुंस्की ने लिखा है कि सामान्य और अस्पष्ट नामधारी इस रूपवादी विधि के अन्तर्गत आमतौर पर बहुत अलग-अलग ढंग से काव्यात्मक भाषा

और शैली का व्यापक और नए-नए ढंग से प्रयोग करने वाले इतने लोग हैं कि इसे बहुत उपयुक्त तौर पर नई विधि के स्थान पर नए समय की बौद्धिकता के नए बौद्धिक कार्य कहा जाना चाहिए। इन सब से अलग बाख़्तिन समूह को उसके एकदम अलग वैचारिक दृष्टिकोण के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। बाख़्तिन को अनेक आलोचक नव-रूपवादी विचारक मानते हैं। कुछ के अनुसार यह समूह वास्तविक रूपवाद का एक उपांतिक भाग है। इसी तरह रूसी रूपवाद और प्राग स्कूल के रूपवाद में सैद्धान्तिक भिन्नता देखी जा सकती है।

रूसी रूपवाद का इतिहास इसके घटक समूहों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न सिद्धान्तों से अलग वाद-विवाद की उस परम्परा में उपलब्ध है जिसमें परस्पर विरोधी विचारों के बीच एक कलात्मक समझ का विकास हुआ और एक साहित्यिक विज्ञान की आधारशिला रखी गई। यह ख़ज़ाना किसी एक आलोचक या समूह में नहीं मिलता। वस्तुत: रूसी रूपवाद का मर्म इसके विभिन्न चिन्तकों के परस्पर असहमत होने के समझौते में है।

1970 के दशक के आरम्भ में कई विद्वानों के लेखन में रूपवाद की आलोचना शुरू हो गई थी। कई नई साहित्यिक दृष्टियाँ, जो साहित्यिक रचना के सामाजिक और राजनीतिक महत्त्व को प्राथमिकता दे रही थीं, बौद्धिक क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व जमाने लग गई थीं। आलोचक इस बात से असहमत थे कि साहित्यिक कृति को उसके सामाजिक उद्भव और परिवेश से अलग किया जा सकता है। इसके बाद से लम्बे समय तक 'रूपवाद' को नकारात्मक दृष्टि से देखा गया, जो साहित्य को किसी भी सामाजिक, राजनीतिक सन्दर्भ से असंपृक्त मानता है। 'रूपवाद' बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में एक बार फिर चर्चा में आया जब 'उत्तर-संरचनावाद' और 'उत्तर-आधुनिकतावाद' के रूप में उभरे नए रुझानों ने किसी न किसी रूप में रूपवादी विधियों का प्रयोग करते हुए उन्हें पुन: सक्रिय किया।

4.4.3.1. रूसी रूपवाद

रूपवाद के उद्भव से पहले बीसवीं सदी के आरम्भ में रूस में प्राचीन और अवैज्ञानिक सौन्दर्यशास्त्र तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ आलोचना की मुख्य धारा में थीं। प्रतीकवादी आलोचना अपने परवान पर थी। इस धारा में सौन्दर्यशास्त्र के रूढ़ प्रतिमानों को पुनर्स्थापित करने और 'कला कला के लिए' जैसी अवधारणाओं को प्रचारित किया जा रहा था। साहित्य और आलोचना में प्रभाववादी और नितान्त व्यक्तिनिष्ठ रुझान पूरी तरह घर कर चुके थे। ऐसे संक्रान्ति काल में रूस के आलोचना जगत् में रूपवाद का उदय हुआ। रूपवादियों ने प्रतीकवाद का विरोध किया और यह संकल्प लिया कि वे काव्यशास्त्र को व्यक्तिवादी और सौन्दर्यवादी सिद्धान्तों के चंगुल से मुक्त करवाकर तथ्यों के वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा में लेजाएँगे।

रूसी रूपवाद ऐसे लेखकों का समूह था जो 1917 की रूसी क्रान्ति के दौरान भविष्यवाद और प्रतीकवाद के साथ-साथ रूस में सक्रिय हुए। भविष्यवादी और रूपवादी कला और विचारधारा के सम्बन्धों को लेकर एक अत्यन्त विचारोत्तेजक बहस में एक-दूसरे के आमने-सामने आए। इसी बहस के दौरान दोनों ने एक साझा मंच बनाया और अपने विचारों को 'कला का वाम मंच' (एल इ एफ) नाम की पत्रिका में अभिव्यक्त करने लगे।

भाषावैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित रूपवादी विचारों में कला के रूपों और शैलियों पर ज़ोर देने की प्रवृत्ति क्रान्ति-पूर्व वर्षों से चली आ रही थी। लेकिन अब उन्हें परम्परागत कला का अपना विरोध एक राजनीतिक रुख़ दिखाई देने लगा और उनमें से अधिकांश ने अपने को क्रान्ति की भावनाओं से जोड़ लिया। इसके बावजूद भी इन सभी को मुख्य रूसी विचारकों जैसे ट्रोट्स्की, बुख़ारिन, लुनाचारस्की और वोरोंस्की के वैचारिक हमलों का सामना करना पड़ा। इन्होंने रूपवादियों द्वारा परम्परा के पूर्ण तिरस्कार की तीव्र आलोचना की क्योंकि इसे वे कला के सामाजिक और ऐतिहासिक पहलुओं का तिरस्कार मानते थे। आगे चलकर बोलोसिनोव और बाख़्तिन के हस्तक्षेप से यह बहस समाप्त हुई और तय हुआ कि भाषा अपने आप में सर्वोच्च वैचारिक परिघटना है और यही वैचारिक संघर्ष का मंच है। रूपवादियों के नए समूह 'बाख़्तिन सर्कल' का गठन इसी प्रक्रिया का परिणाम था।

रूसी रूपवाद के दो संप्रदाय थे। पहला, रोमन याकॉब्सन के नेतृत्व में 1915 में मॉस्को में स्थापित 'मॉस्को लिंग्विस्टिक सर्कल' था, जिसके अन्य लेखकों में ओसिप ब्रिक और बोरिस तोमशेव्स्की के नाम प्रमुख हैं। दूसरा, सैंट पीटर्सबर्ग (पैट्रोग्राद) स्थित 'द सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ पोयटिक लैंग्वेज़' (ओपोयाज़) था, जिसकी स्थापना 1916 में हुई थी और विक्तोर श्क्लोव्स्की, बोरिस आईकेनबॉम और यूरी तिन्यानोव इस समूह के अग्रणी चिन्तक थे। रूसी रूपवाद के अन्य महत्त्वपूर्ण लेखकों में लियो येकुबिन्स्की और लोकवार्ता के विशेषज्ञ व्लादिमीर प्रॉप के नाम उल्लेखनीय हैं। रूपवाद के आरम्भिक दौर में श्क्लोव्स्की के विचारों का पूरे परिदृश्य पर बहुत प्रभाव था।

4.4.3.2. प्राग सर्कल और संरचनावाद

रोमन याकॉब्सन द्वारा स्थापित 'मॉस्को लिंग्विस्टिक सर्कल' भाषा विज्ञान के क्षेत्र में बाद के विकास से सीधे जुड़ा हुआ है। 1920 में याकॉब्सन मॉस्को छोड़ कर प्राग आ गए थे और वहाँ 1926 में उन्होंने निकोलाई त्रुबेत्ज़्कॉय, रेने वेलेक और अन्य विद्वानों के साथ मिलकर 'प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल' की स्थापना की। उन्होंने साहित्यिक सिद्धान्त के साथ भाषा विज्ञान को जोड़ते हुए अपने विचार प्रस्तुत किए। वे फर्दीनांद द सॉस्सुर से बहुत प्रभावित थे। प्राग संप्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने भाषा में प्रकट होने वाली ध्वनियों को सूचीबद्ध करने के स्थान पर यह पता लगाने का प्रायास किया कि वे परस्पर किस तरह से सम्बन्धित हैं। रोमन याकॉब्सन और रेने वेलेक द्वितीय विश्व युद्ध पहले अमेरिका आ गए जहाँ उन्होंने 'नई समीक्षा' से जुड़ कर अपने रूपवादी विचारों का विकास किया। 'नई समीक्षा' की अनेक अवधारणाएँ रूपवाद से ली गई हैं। प्राग स्कूल ने रूसी रूपवाद और सॉस्स्युर के भाषा विज्ञान को मिलाने की कोशिश की। याकॉब्सन का अधिकांश लेखन संरचनावाद के सिद्धान्तों को मान्यता देता है।

4.4.3.3. बाख़्तिन सर्कल

बाख़्तिन सर्कल बीसवीं सदी में रूसी विचारकों का एक समूह था जिसने मिख़ाइल मिख़ाइलोविक बाख़्तिन (1895-1975) के विचारों के आधार पर सामाजिक और कलात्मक समस्याओं के अध्ययन में अपना

योगदान दिया। इस समूह ने भाषा के दर्शनशास्त्र, रूसी रूपवाद की समस्याओं और उपन्यास के इतिहास और सैद्धान्तिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस सर्कल में बाख़्तिन के अतिरिक्त मारिया वेनियमिनोव्ना इयुदिना, मत्वेइ कैगन, पावेल मेद्वेदेव, वेलेंतिन वोलोशिनोव आदि विचारक शामिल थे। 1918 में स्थापित इस सर्कल की गतिविधियों का मुख्यालय 1924 से लेनिनग्राद बना ।

बाख़्तिन सर्कल में साहित्य को सर्व-समावेशी विचारधारा की एक शाख़ा के रूप में लिया गया है। बाख़्तिन के अनुसार साहित्य हमेशा मानवीय चिन्तन की अन्य शाखाओं से अन्तर्क्रिया करता है, इसलिए साहित्य की स्वायत्तता की एक सीमा होती है। उनके विचार में प्रत्येक वैचारिक घटना एक संकेत है, एक ऐसी वास्तविकता जो एक दूसरी वास्तविकता के लिए उपस्थित है। समस्त वैचारिक जगत् परस्पर सम्बद्ध सूत्रों का ताना-बाना है। ये सूत्र साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि कई प्रकार के होते हैं तथा प्रत्येक सूत्र की अपनी वास्तविकता होती है जिसे वे अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रकट करते हैं। बाख़्तिन सर्कल द्वारा साहित्य को संकेतवादी दृष्टि से व्याख्यायित करने की प्रतिध्वनि येकोब्सन में सुनी जा सकती है जो शाब्दिक कला को एक विशेष प्रकार के संकेत – अभिव्यंजना के रूप में लेता है। बाख़्तिन के यहाँ साहित्य अन्य वैचारिक अनुशासनों से अलग केवल संकेतार्थ की भिन्नता के कारण ही नहीं बल्कि संकेतन की विधि की भिन्नता के कारण भी है।

बाख़्तिनवादियों के इन संकेत-वैज्ञानिक आग्रहों के कारण उन्हें भाषा और साहित्य सम्बन्धी अपने रूपवादी सिद्धान्तों को संशोधित करना पड़ा। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक शाब्दिक संकेत जिस अन्य संकेत को प्रतिबिम्बित या परावर्तित करता है वह ठीक उसी तरह होता है जैसे एक कथन दूसरे कथन का प्रत्युत्तर हो। इससे एक संवाद निर्मित होता है। 'संवाद' की धारणा बाख़्तिनवादी साहित्यिक चिन्तन की केन्द्रीय अवधारणा है। भाषा की यह अर्थगर्भित अवधारणा रूपवाद की मौलिक मान्यताओं के लिए एक चुनौती है, क्योंकि रूपवादी भाषाविज्ञान मुख्य रूप से भाषा के उन पहलुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है जो उसे व्यवस्थित रखे, उसे एक रूपाकार प्रदान करे। एक संवाद के रूप में भाषा व्यवस्था न होकर एक प्रक्रिया हो जाती है – अलग-अलग दृष्टिकोणों और विचारधाराओं के साथ निरन्तर संघर्ष की प्रक्रिया। बाख़्तिनवादियों की जिज्ञासा का कारण विमर्श और वैचारिक संवाद की समरूपता नहीं बल्कि उसकी विषमता है।

4.4.3.4. नई समीक्षा

साहित्य के इतिहास में बीसवीं सदी का आरम्भ ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, रोमैंटिक और प्रभाववादी आलोचना के साथ हुआ था। ऐतिहासिक आलोचन-दृष्टि में प्रयुक्त सौन्दर्यशास्त्रीय आग्रहों ने रूपवाद और नई समीक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 'नई समीक्षा' शब्द का प्रयोग सबसे पहले जोल एलियास स्पिनगार्न ने 1910 के अपने एक व्याख्यान में किया था। स्पिनगार्न क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से बहुत प्रभावित था। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में स्पिनगार्न का सम्बन्ध 'नई समीक्षा' से नहीं था, लेकिन उसने एक ऐसे रचनात्मक और कल्पनाशील आलोचना-सिद्धान्त का प्रस्ताव किया जो साहित्य की ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक मान्यताओं के स्थान पर सौन्दर्यात्मक विशेषताओं को प्राथमिकता दे। आगे चलकर जॉन क्रो रैंसम की पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज़्म'

(1941) के प्रकाशन के साथ एक विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में 'नई समीक्षा' नाम प्रचलित हुआ। इस प्रवृत्ति के लिए 'सौन्दर्यात्मक रूपवाद' तथा 'विश्लेषणात्मक आलोचना' जैसे नाम भी सामने आए लेकिन 'नई समीक्षा' नाम ही आलोचना जगत् में स्वीकृत हुआ।

'नई समीक्षा' की शुरुआत इंग्लैण्ड में 1920 के आस-पास टी.एस. एलियट, एज़रा पाउण्ड, विलियम एम्पसन और विशेष रूप से आई.ए. रिचर्ड्स की रचनाओं से हुई। 1924 में प्रकाशित रिचर्ड्स की आलोचना पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म' में नए साहित्यिक प्रतिमान, जैसे विडम्बना, तनाव और सन्तुलन आदि प्रस्तुत किए गए तथा भाषा के काव्यात्मक और साधारण प्रयोग में भेद किया गया। अमेरिका में 'फ़्यूजिटिव' और 'सदर्न अग्रेरियन' नाम से प्रसिद्ध आलोचकों ने नई समीक्षा को अपनाया। उन्होंने औद्योगिक उत्तरी अमेरिका के वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के अमानवीय चेहरे के विरुद्ध दक्षिणी अमेरिका के प्राचीन मूल्यों की पैरवी की। इनमें से जॉन क्रो रैंसम और एलन टेट ने एलियट और रिचर्ड्स के विचारों को आगे बढ़ाया। रैंसम ने 1922 से 1925 तक 'फ़्यूजिटिव' नाम की कविता की पत्रिका का सम्पादन किया जिसमें टेट के अलावा रॉबर्ट पेन वॉरन और डोनाल्ड डैविड्सन आदि पुस्तक समीक्षाएँ और साहित्यिक टिप्पणियाँ लिखते थे।

जॉन क्रो रैंसम की पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज़्म' (1941) को 'नई समीक्षा' का घोषणा-पत्र कहा जाता है। रैंसम ने आलोचना को ऐतिहासिक विवेचन को छोड़कर सौन्दर्यगत विश्लेषण और मूल्यांकन की दिशा में आगे बढ़ने का आह्वान किया। उसने रूढ़िवादी नव-मानवतावाद और सामाजिक परिवर्तन की वामपंथी आलोचना, दोनों के बारे में कहा कि ये सौन्दर्यशास्त्रीय पक्षों के स्थान पर नैतिक पक्षों को अधिक महत्त्व देते हैं, अत: दोनों ही विधियाँ साहित्य के लिए अनुपयुक्त हैं। ऐतिहासिक और जीवनीपरक आलोचना की मान्यताओं को स्वीकार करते हुए रैंसम इस बात पर ज़ोर देता है कि ये विधियाँ भी अपने आप में साध्य नहीं हैं, लेकिन आलोचना के असली लक्ष्य तक पहुँचने में सहायक हैं। आलोचना का वास्तविक लक्ष्य साहित्य के सौन्दर्यगत और चारित्रिक मूल्यों को परिभाषित करना और साहित्य का आनन्द उठाना है। रैंसम के अनुसार आलोचक को साहित्य ही पढ़ना चाहिए, साहित्य के बारे में नहीं। अत: आलोचना से निम्नलिखित बातों को बाहर रखना चाहिए :

- व्यक्तिगत प्रभाव, क्योंकि साहित्यिक समीक्षा को वस्तु के स्वरूप का उल्लेख करना चाहिए न कि व्यक्ति पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का।
- सारांश और भावानुवाद, क्योंकि कथानक और कहानी वास्तविक कथावस्तु का संक्षिप्तीकरण है।
- ऐतिहासिक अध्ययन, इसमें साहित्यिक पृष्ठभूमि, जीवनी, साहित्यिक स्रोत और सादृश्य होते हैं।
- भाषावैज्ञानिक अध्ययन, इसमें संकेतों की पहचान और शब्दों के अर्थ खोजे जाते हैं।
- नैतिक बातें, क्योंकि यह कृति की सम्पूर्ण विषयवस्तु नहीं होती है।
- कोई अन्य ऐसा अध्ययन जो किसी अमूर्त विषय से सम्बन्धित हो अथवा सन्दर्भ से अलग किया हुआ गद्य हो।

रैंसम ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि आलोचक का कार्य कविता की तकनीकी विशेषताओं जैसे छन्द-विधान, अलंकार और कल्पनाशीलता का अध्ययन करना है तथा उसे यह देखना चाहिए कि कविता में ये स्वायत्त रूप से अपने नियमों से संचालित हो।

'नई समीक्षा' में कृति के मूल्यांकन में न तो उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देने की आवश्यकता समझी गई और न ही कृतिकार के जीवन और जीवन-सन्दर्भों पर कोई ध्यान दिया गया। कृति के ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भों पर ध्यान नहीं देने के कारण वे कृति को स्वयं-पूर्ण स्वायत्त इकाई मानने लगे थे। इससे पूरा ध्यान कृति के रूप और संरचना पर केन्द्रित हो गया और आलोचक उसकी रूपात्मक विशेषताओं के विश्लेषण में मशगूल हो गया। इससे नई समीक्षा में रूपवाद और कलावाद की विशेषताएँ विकसित होने लगीं और उस पर रूपवादी और कलावादी होने के आरोप भी लगे। यद्यपि उनकी पद्धति इसी तरह की है लेकिन यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण होगा कि नई समीक्षा ने कृति के मूल्यांकन में कृति से बाहर के सभी तत्त्वों की पूर्णत: अनदेखी की है। 'नई समीक्षा' के अधिकांश आलोचक कवि, कहानीकार और उपन्यासकार भी थे। साहित्यिक भाषा की अस्पष्टता इस प्रवृत्ति की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। रिचर्ड्स के अनुसार भाषा में एक साथ अनेक अर्थ मौजूद होते हैं। अत: यह कहना कि कृति में केवल एक अर्थ होता है, अन्धविश्वास के अलावा और कुछ नहीं है।

नए समीक्षकों के अनुसार कृति में उपलब्ध सूचना के अतिरिक्त अन्य सूचना अनावश्यक है। कृति के विश्लेषण में मूल्यों और सामाजिक परिवेश के स्थान पर प्रविधि पर अत्यधिक बल दिया जाता था। कविता अथवा अन्य साहित्यिक रचना के मूल्यांकन में उनका ध्यान उसमें प्रयुक्त भाषा ,बिम्ब-विधान तथा अन्य आन्तरिक उपकरणों पर ही अधिक रहता था। इस पद्धति के आग्रहों ने इसे समाज से दूर कर दिया था। अन्तत: इन्हें यह अहसास हुआ और क्लीन्थ ब्रुक्स तक को लिखना पड़ा कि यदि कविता को सही ढंग से समझना है, उसके तनावों और विभिन्न उपकरणों के सामंजस्य को समझना है तो आलोचक को कविता से बाहर आकर अन्य कारकों को भी देखना पड़ेगा। यह 'नई समीक्षा' की सपाट शब्दावली, स्वीकृत लेखकों की विविधता में कमी, सूत्रबद्ध आलोचना-मानों का आग्रह तथा उनके दृष्टिकोण और उपागम की संकीर्णता आदि का परिणाम था कि 1960-70 के दौरान इस आलोचना प्रवृत्ति को नए साहित्यिक रुझानों ने नकार दिया।

4.4.3.5. शिकागो संप्रदाय

जिस समय नई समीक्षा के आलोचक अपने साहित्यिक विचारों की घोषणा कर रहे थे लगभग उसी समय आलोचकों का एक नया समूह अपने विचारों के साथ प्रकट हुआ। इस समूह को 'शिकागो स्कूल' या नव-अरस्तूवादी कहा जाता है। 1930 में शिकागो विश्वविद्यालय के मानविकी विभाग में कुछ सांस्थानिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनकारी गतिविधियों से जुड़े हुए छह आलोचकों को बाद में 'शिकागो आलोचक' के रूप में प्रसिद्धि मिली; ये हैं – आर.एस. क्रेन, रिचर्ड मैकन, एलडर ऑलसन, डब्ल्यू.आर. कीस्ट, नॉर्मन मैक्लीन तथा बर्नार्ड वियेनबर्ग। आगे चलकर इन आलोचकों ने अपना घोषणा-पत्र भी प्रकाशित किया – 'आलोचक और आलोचना : प्राचीन और नवीन' (1952)। इसमें नई समीक्षा की कुछ मान्यताओं पर आक्रमण किया गया तथा

आलोचना के अपने वैकल्पिक रूपगत सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की। उनके विचारों पर अरस्तू के ग्रन्थ 'पोयटिक्स' का बहुत प्रभाव था।

क्रेन ने अपने एक लेख में रैंसम के सुर में सुर मिलाते हुए लिखा था कि आलोचना को अपना ध्यान ऐतिहासिक विधि से हटकर सौन्दर्यात्मक विधि की ओर केन्द्रित कर देना चाहिए। बाद में इन्होंने नई समीक्षा के अनेक समीक्षा-सिद्धान्तों से असहमत होकर उनकी आलोचना की और कहा कि साहित्यिक रचना के मूल्यांकनमें एक ओर साहित्य के व्यवस्थित सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए, तो दूसरी ओर कृति के गहन पाठ पर आधारित मौलिक अध्ययन भी प्रस्तुत करना चाहिए। शिकागो स्कूल के आलोचकों ने अरस्तू के 'पोयटिक्स' से अनेक समीक्षा-सूत्र ग्रहण करते हुए अपने आलोचना-सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। जहाँ नई समीक्षा ने अपना ध्यान भाषा के काव्यात्मक प्रयोग की ओर लगाया तथा विडम्बना, रूपक, तनाव और सन्तुलन आदि को काव्य के मुख्य तत्त्वों के रूप में प्रस्तुत किया, वहीं शिकागो स्कूल के आलोचकों ने अरस्तू के काव्य-मानकों, जैसे कथानक, चरित्र और विचार आदि को अपने काव्य-मान घोषित किया।

4.4.4. रूपवादी पद्धति

रूपवाद का विकास दो मुख्य विधियों के रूप में हुआ : भाषा का एक सिद्धान्त तथा रचना के पाठ की एक पद्धति।

रूपवाद कला और साहित्य को उसकी बनावट और क्रियाविधि के आधार पर समझने का समीक्षा सिद्धान्त है। एक कलाकृति केवल व्यक्तिगत अभिव्यक्ति या किसी नैतिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक विचार या संदेश की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है। किसी रचना का साहित्यिक और कलात्मक महत्त्व उसके विशिष्ट रूप में निहित है। कृति का मूल्यांकन उसके रूप-सौष्ठव और उसमें प्रयुक्त विभिन्न कला-कौशल विधियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

विक्तोर श्क्लोव्स्की ने अपने एक लेख 'तकनीक के रूप में कला' (1917) में इस बात पर ज़ोर दिया कि 'यथार्थ का विरूपीकरण', 'विचित्र का निर्माण' या 'विपरिचयन' सभी कलाओं का केन्द्रीय तत्त्व रहे हैं। उसने दावा किया कि दिन-प्रतिदिन के अनुभव की सामान्य प्रकृति हमारे दृष्टिकोण को रूढ़िगत और स्वचालित बना देती है, लेकिन कला जीवन के स्पन्दन को लौटाने के लिए है; यह व्यक्ति को चीज़ों का एहसास कराने के लिए है, पत्थर को पथरीला बनाने के लिए है। कला का उद्देश्य चीज़ों को जैसे हम जानते हैं वैसे नहीं, बल्कि जैसे उनको देखा जाता है वह अनुभूति प्रदान करना है। अत: कला किसी वस्तु की कलात्मकता को अनुभव करने का तरीका है, इसमें स्वयं उस वस्तु कामहत्त्व नहीं है।

बोरिस आईकेनबॉम ने अपने एक लेख 'रूपात्मक विधि का सिद्धान्त' (1926) में रूपवादी पद्धति के मुख्य विचार-बिन्दुओं का वर्णन किया है :

० रूपवाद का उद्देश्य साहित्य का एक स्वतंत्र एवं तथ्यपरक विज्ञान का निर्माण करना है।

० साहित्य का निर्माण भाषा से होता है इसलिए भाषाविज्ञान साहित्य के विज्ञान का आधारभूत तत्त्व है।

० साहित्य बाह्य परिवेश से स्वायत्त होता है और इसीलिए साहित्यिक भाषा आम व्यवहार की भाषा से अलग होती है। लेकिन उससे कमतर नहीं होती, क्योंकि यह पूरी तरह सम्प्रेषणीय नहीं होती है।

० साहित्य का अपना इतिहास है, रूपात्मक संरचना में नित नव्यता का इतिहास। यह इतिहास बाह्य भौतिक इतिहास द्वारा निर्धारित नहीं होता है।

० एक साहित्यिक कृति में क्या अभिव्यक्त हुआ है इस बात को इससे अलग नहीं किया जा सकता कि वह कैसे अभिव्यक्त हुआ है। और इसलिए कलाकृति का रूप और उसकी संरचना उसकी अन्तर्वस्तु का सजावटी आवरण नहीं, अन्तर्वस्तु का अभिन्न अंग है।

4.4.5. रूपवाद के मुख्य तत्त्व और संकल्पनाएँ

रूपवाद के उद्भव और उसके विकास को जान लेने के बाद इस प्रवृत्ति की वास्तविक समझ के लिए इसके मुख्य तत्त्वों और विशेषताओं को जान लेना आवश्यक है। तभी हम इसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे तथा कलात्मक इतिहास की इस सर्वाधिक व्यापक और विविधतापूर्ण घटना के वास्तविक योगदान को भी समझ सकेंगे।

4.4.5.1. रूपवाद : साहित्य का विज्ञान

बोरिस आईकेनबॉम ने रूपवाद के विषय-क्षेत्र का संकेत करते हुए लिखा है कि रूपवाद को केवल इस रूप में समझा जा सकता है कि वह साहित्य का एक ऐसा स्वतंत्र विज्ञान बनाता है जो विशेष रूप से साहित्यिक सामग्री का अध्ययन करता है।

आईकेनबॉम के अनुसार रूपवाद का मुख्य लक्षण पूर्व-निर्मित सौन्दर्यशास्त्र और सामान्य सिद्धान्तों का अस्वीकार है। उसके विचार में रूपवादी इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि इतिहास एक क्रान्तिकारी नज़रिये की माँग कर रहा था। रूपवादी आन्दोलन ने वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद के उभार की एक नई दिशा चुनी, जिसमें दार्शनिक मान्यताओं तथा मनोवैज्ञानिक और सौन्दर्यशास्त्रीय व्याख्याओं को अस्वीकार कर दिया गया। इन सबसे अलग उसने विभिन्न कलात्मक और साहित्यिक विषयों पर अपनी मौलिक दृष्टि का प्रस्ताव किया। रूपवाद के प्रवर्तन की पृष्ठभूमि में प्रत्यक्षवाद की विचारधारा थी। जिसे 'विज्ञान' कहा जाता है उन विधियों और तौर-तरीकों पर बल देना, सामान्य विधियों या सिद्धान्तों के स्थान पर तात्कालिक रूप से प्राप्त आनुभविक ज्ञान को केन्द्र में रखकर भिन्न-भिन्न तथ्यों को साथ में लाना और उन्हें समझने का प्रयास करना – ये सब कला को

विचारधारात्मक और राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति से मुक्त करने के प्रयास थे। इसीलिए रूपवाद साहित्य का विज्ञान है।

4.4.5.2. काव्य-ध्वनि की स्वतन्त्रता

रूसी रूपवादियों ने कविता के स्वनिमिक-पक्ष पर बहुत गम्भीरता से विचार किया है। उन्होंने विस्तृत विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् यह विचार प्रस्तावित किया कि साधारण भाषा में सम्प्रेषण के साधन होते हैं लेकिन कविता में सम्प्रेषण के साधनों का महत्त्व उनके अर्थ की अपेक्षा उनके ध्वनि-संयोजन के कारण अधिक होता है। दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान या इतिहास जैसे अनुशासनों को साहित्य के लिए गौण और आकस्मिक बताते हुए रूपवादियों ने इन सिद्धान्तों की आलोचना की तथा साहित्य को इनसे पृथक् करने के प्रयास किए। आईकेनबॉम के अनुसार यह पृथक्करण ही साहित्य के अध्ययन की विशेषता है। इसलिए रूपवादियों ने अन्य उपागमों के स्थान पर भाषाविज्ञान को प्राथमिकता दी, क्योंकि यही काव्यशास्त्र के क़रीब है और उसके साथ अपनी विषयवस्तु का आदान-प्रदान करता है। रूपवाद के इस आग्रह की मूल प्रेरणा कुछ हद तक भाषा-वैज्ञानिक लियो येकुबिन्स्की से मिली, जिसने काव्यशास्त्र के लिए आधारभूत सिद्धान्त दिया कि "व्यावहारिक आम भाषा और काव्य भाषा में विरोधाभास होता है"। अपने निबन्ध 'काव्य-भाषा की ध्वनि पर' (1916) में येकुबिन्स्की ने विचार प्रस्तुत किया कि व्यावहारिक भाषा में ध्वनि की ऐसी भाषायी आकृतियाँ और रूपात्मक विशेषताएँ होती हैं जिनका कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं होता और वे मात्र संचार का माध्यम होती हैं। लेकिन कविता आदि साहित्यिक विधाओं में प्रयुक्त भाषायी संरचनाएँ 'स्वतंत्र मूल्य' प्राप्त कर लेती हैं। श्क्लोव्स्की ने अपने लेख 'कविता और अर्थहीन भाषा पर' (1916) में तर्क दिया कि अर्थहीनता कविता की असाधारण विशेषता है। कविता का अधिकांश आनन्द और उल्लास उसके उच्चारण में, वाक्-तंत्र के अंगों के स्वतंत्र नृत्य में होता है। ओसिप ब्रिक ने इससे भी आगे बढ़कर कहा कि ध्वनियाँ केवल अर्थ की श्रुतिमधुर सहायिकाएँ ही नहीं होतीं, वे एक स्वतंत्र काव्य-प्रयोजन का परिणाम भी होती हैं।

4.4.5.3. रूप की नई परिभाषा

रूपवादियों ने अनुभव किया किया कि परम्परा से रूप को एक आवरण अथवा ऐसा पात्र माना जाता था जिसमें अन्तर्वस्तु रूपी तरल डाल दिया जाता था। रूप की नवीन रूपवादी धारणा में किसी सहसम्बन्धी अन्तर्वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं मानी गई। रूप को एक आवरण के स्थान पर 'एक स्वत:पूर्ण, ठोस, गतिशील और वास्तविक वस्तु के रूप में परिभाषित किया गया। श्लोव्स्की के अनुसार कलात्मक और काव्यात्मक अवबोध के अन्तर्गत हमें रूप का ही अवबोध होता है।

यह दृष्टिकोण प्रतीकवाद से भिन्न था जिसमें रूप को किसी न किसी तरह अन्तर्वस्तु के लिए सहायक माना जाता था। इसका भेद सौन्दर्यशास्त्र से इस अर्थ में था कि सौन्दर्यशास्त्र रूप और अन्तर्वस्तु की अलग-अलग व्याख्या करता था। रूपवादियों ने काव्यात्मक और साधारण भाषा के अलग-अलग प्रयोगों का परीक्षण किया

तथा अन्तर्वस्तु से सम्बद्ध रूप की धारणा के स्थान पर तकनीक की धारणा को स्थापित किया। उन्होंने माना कि तकनीक उन आधारों में से एक मुख्य आधार है जिससे काव्यात्मक और व्यावहारिक भाषा का अन्तर स्पष्ट किया जाता है। रूपवादियों के अनुसार व्यावहारिक भाषा और उससे स्वत: प्रकट होने वाले प्रत्यक्षण में परिचय का गुण होता है, जबकि साहित्यिक भाषा और तकनीकों से हमें अपरिचय का अवबोध होता है। 'विपरिचय' का उद्देश्य भाषा और तकनीक की नवीनता प्रकट करना है, विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति उसका लक्ष्य नहीं है। अत: रूप अर्थात् तकनीक या विधियाँ ही साहित्यिक रचना का अनिवार्य गुण होता है, बल्कि एक तरह से यही इसकी विषय-वस्तु होता है। इसीलिए श्क्लोव्स्की की घोषणा है कि "साहित्यिक कृति की अन्तर्वस्तु इसके (कृति के) रूपों का योगफल होती है।"

4.4.5.4. कथानक और साहित्यिक विकास

रूपवादियों ने कथानक के निर्माण की विशिष्ट युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। श्क्लोव्स्की ने 'कथानक' को रूपांकनों (अभिप्रायों) का सम्मिश्रण और 'कहानी' का पर्याय मानने की धारणा का खण्डन किया। उनके अनुसार कथानक एक संयोजक युक्ति या उपकरण है, न कि एक विषय-वस्तु। कथानक की रचना के उपकरणों में उसकी रूपरेखा और रूपांकनों का ताना-बाना शामिल होता है, जबकि कहानी केवल कथानक के निर्माण का सामान होती है और उसमें भी रूपांकनों, पात्रों और विषय-वस्तु के चयन का विकल्प होता है।

श्क्लोव्स्की ने साहित्यिक रूपों के विकास के पारम्परिक विचार का भी खण्डन किया। रचना के सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेश के अध्ययन को अनावश्यक बताते हुए उसने तर्क दिया कि नए रूप का प्रयोजन अपना सौन्दर्यात्मक महत्त्व खो चुके पुराने रूपों को बदलना है। श्क्लोव्स्की की तरह बोरिस तोमेशेव्स्की ने भी गद्य-आख्यान के तत्त्वों और उनके आपसी सम्बन्धों पर अपने निबन्ध 'थिमेटिक्स' (1925) में विस्तार से विचार किया है। उसके अनुसार साहित्य स्वयं साध्य नहीं होता है। वह अपने विषय से ही एकताबद्ध रहता है। रचना का विषय रचना को संगत बनाता है। तोमेशेव्स्की के अनुसार गद्य-आख्यान में मुख्य भेद 'कहानी' और 'कथानक' के रूप में होता है। उसका ध्यान मुख्य रूप से कथानक पर है, क्योंकि कृति की कलात्मकता वहीं निहित होती है; कहानी तो वह पृष्ठभूमि है जिसके आधार पर कथानक का अध्ययन किया जाता है। कहानी घटनाओं और अनुभवों की वास्तविक क्रम-व्यवस्था प्रदर्शित करती है, जबकि कथानक उन घटनाओं और अनुभवों का कलात्मक प्रस्तुतीकरण है जिसमें वास्तविकता को नया अनुक्रम दिया जाता है, कुछ घटनाओं को बार-बार दिखाया जाता है तो कुछ का समय अन्तराल बदल दिया जाता है। यह सब कलाकृति में उनके प्रभाव को बढ़ाने के लिए किया जाता है। 'विपरिचयकरण' की अवधारणा के अन्तर्गत कलाकृति में वास्तविकता और उसके प्रस्तुतीकरण में स्पष्ट अन्तर होता है। अत: रूपवाद दर्पण की तरह साहित्य में वास्तविकता के हू-ब-हू निरूपण को अस्वीकार करता है। रूपवादियों के अनुसार साहित्य का अपना इतिहास होता है, जो समाज के इतिहास से अपेक्षाकृत स्वतंत्र होता है। साहित्यिक रचनाओं के पारस्परिक प्रभाव और अन्तर्क्रिया से निर्मित इतिहास ही रूपवादी विवेचन की उपयुक्त सामग्री है, न कि साहित्यिक संसार से बाहर का कोई नैतिक या सामाजिक इतिहास।

4.4.5.5. कविता का रूपवादी स्वरूप

प्रतीकवादी जहाँ काव्य और गद्य की सीमाओं को समाप्त करते हुए इनका भेद मिटाने के प्रयास कर रहे थे, वहीं रूपवादियों ने काव्य और गद्य के भेद पर बल दिया। ओसिप ब्रिक ने इस दिशा में पहल करते हुए लिखा कि कविता की 'लय' कोई ऊपरी अनुलग्नक नहीं है, बल्कि यह उसकी रचना का आधार है। लयात्मक आकृतियाँ कविता के वाक्य-विन्यास और व्याकरणिक आकृतियों से नाभि-नालबद्ध जुड़ी होती हैं। आईकेनबॉम के अनुसार कविता की शैलीगत विशेषताएँ मुख्यत: शाब्दिक होती हैं।

रूपवादियों की मौलिक उद्भावना यह है कि काव्य-रूप को उसकी अन्तर्वस्तु की बाह्य अभिव्यक्ति के तौर पर नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि रूप ही काव्यात्मक पाठ की वास्तविक अन्तर्वस्तु है। कविता में प्रयुक्त शब्द सामान्य भाषा से लिए जाते हैं लेकिन उनमें काव्य-पाठ की दृष्टि से नई अर्थ-ध्वनियाँ भर दी जाती हैं। काव्योक्ति में शब्द हमेशा अर्थ-युक्त हो, यह आवश्यक नहीं है। शब्दों के सामान्य अर्थ को बाधित या परिष्कृत करना कविता के शब्दार्थ की अनन्य विशिष्टता है। काव्य-रूपों का विकास इसी तरह कवियों के मौलिक प्रयासों का समेकित परिणाम है। कविता की लय, अर्थच्छायाएँ और शब्द-संरचनाएँ इसी प्रक्रिया से विकसित होती हैं। अन्तर्वस्तु रूप के विरोध में या बाहर न होकर स्वयं रूपात्मक तत्त्व है।

4.4.5.6. साहित्यिकता

रूपवाद साहित्य को मुख्यत: भाषा के विशेषीकृत ढंग के तौर पर देखता है। वह भाषा के सामान्य व्यावहारिक प्रयोग और साहित्यिक प्रयोग को अलग-अलग और विरोधी मानता है। रूपवाद में माना गया है कि जहाँ सामान्य भाषा का कार्य भाषा से बाहर की दुनिया से सम्बन्धित संदेशों और सूचनाओं का सम्प्रेषण करना है, वहाँ साहित्यिक भाषा का कार्य बाह्य सन्दर्भों द्वारा सूचना या संदेश देना नहीं है, बल्कि पाठक का ध्यान अपने 'रूपात्मक' स्वरूप अर्थात् भाषायी संकेतों की विशेषताओं और अन्तस्सम्बन्धों की तरफ खींचते हुए उसे एक विशेष प्रकार का अनुभव प्रदान करना है। साहित्यिक रचना का भाषाविज्ञान सामान्य व्यावहारिक विमर्श के भाषाविज्ञान से अलग होता है क्योंकि इसके नियम उन विशिष्ट अभिलक्षणों को प्रस्तुत करने का कार्य करते हैं जिसे रूपवाद की शब्दावली में रचना की 'साहित्यिकता' कहा जाता है। साहित्य का लक्ष्य केवल साहित्य है। इसके अपने नियम हैं और यह स्वायत्त है।

रोमन याकॉब्सन ने स्वीकार किया है कि साहित्य के विज्ञान का लक्ष्य साहित्य नहीं है अपितु साहित्यिकता अर्थात् वह तत्त्व है जो किसी कृति को साहित्यिक कृति बनाता है।

4.4.5.7. विपरिचयकरण

रूपवाद की एक प्रमुख स्थापना है कि साहित्य की भाषा की अपनी विशेष पद्धतियाँ और प्रभाव होते हैं। साहित्य की भाषा और साधारण भाषा में स्पष्ट अन्तर होता है। श्क्लोव्स्की ने अपने निबन्ध 'तकनीक के रूप में

कला' (1917) में दिखाया है कि साहित्य के सभी रूपों में 'साहित्यिकता' साहित्य को अपरिचित बनाने में निहित होती है। यही 'विपरिचयकरण' का रूपवादी सिद्धान्त है। श्क्लोव्स्की साहित्यिक और असाहित्यिक का भेद प्रकट करने में भाषा पर अधिक बल नहीं देता। उसके चिन्तन के केन्द्र में साहित्य का प्रभाव पैदा करने वाली प्रक्रिया तथा वह विधि या तकनीक है जिसके माध्यम से साहित्यिक प्रभाव प्रदर्शित होता है। साहित्यिक भाषा और विधियों का मुख्य प्रकार्य परिचित संसार को इस तरह प्रस्तुत करना होता है कि वह नया और अपरिचित लगे। साहित्य में आने वाले अनुभव नए लगने चाहिए ताकि हम उनका नए सिरे से आनन्द प्राप्त कर सकें, मूल्यांकनकर सकें।

श्क्लोव्स्की के अनुसार हम अपने दैनिक जीवन की सामान्य बातचीत में आदतन घिसी-पिटी उक्तियों और एक जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। प्राय: हम आधे-अधूरे वाक्यों में बात करते हैं और बात को बीच में छोड़ भी देते हैं। यह एक प्रकार की बीजगणीतीय प्रक्रिया है जो हमारे आम अवबोध को प्रभावित करती है। आम व्यवहार में वस्तुओं के स्थान पर संकेतों से काम लिया जाता है। यह देखा जाता है कि हम चीजों को समझें उससे पहले वे धुंधली होकर बिखर जाती हैं। उनका असर इतना कम होता है कि कुछ समय बाद हम उनका मूल तत्त्व ही भूल जाते हैं। रूपवादी दृष्टि में कला की सार्थकता हमारे साधारण अवबोध के परिष्कार में मानी जाती है। कला की तकनीक चीज़ों को 'अपरिचित' और कठिन बनाती है ताकि हमारे अवबोध की प्रक्रिया भी कठिन और लम्बी हो सके। चूँकि अवबोध या प्रत्यक्षण की प्रक्रिया ही सौन्दर्यानुभूति का साध्य है, इसलिए इसकी प्रक्रिया लम्बी होनी ही चाहिए। श्क्लोव्स्की का दावा है कि जहाँ रूप है वहाँ 'विपरिचयकरण' भी है। विपरिचयकरण कविता और गद्य-आख्यान दोनों में अनिवार्य प्रक्रिया है। कविता में यह मुख्यत: भाषा के माध्यम से घटित होता है, जबकि गद्य में विषय-वस्तु का विपरिचयकरण होता है।

4.4.6. पाठ का सारांश

रूपवाद एक साहित्यिक सिद्धान्त है जिसका विकास बीसवीं सदी के दूसरे दशक में रूस में हुआ। सीमित अर्थों में रूपवाद का प्रयोग साहित्यिक भाषा-विज्ञान के लिए भी किया जाता है।

रूसी रूपवादी मुख्य रूप से इस ओर ध्यान देते थे कि एक साहित्यिक रचना किस प्रकार अपना प्रभाव ग्रहण करती है। उनका लक्ष्य साहित्य के एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की खोज करना था। रूपवादियों ने कृति की वस्तु और उसके रूप को मिला दिया। उन्होंने लेखक को उपलब्ध साहित्यिक उपकरणों और परम्पराओं के उपयोग से कृति का संयोजन करने वाला एक कारीगर मान लिया था। जो कुछ है कृति है, लेखक कुछ भी नहीं। पूरा ज़ोर कृति की साहित्यिकता पर था। रूपवाद का मुख्य भौगोलिक क्षेत्र रूस था, लेकिन इसके कई समूह अन्य देशों में भी सक्रिय हुए। इस कलात्मक पद्धति ने 'नई समीक्षा', शैलीविज्ञान और संरचनावाद जैसे बाद के साहित्यिक आन्दोलनों को फलने-फूलने की ज़मीन दी। रचना की आत्यंतिक साहित्यिकता पर बल देने तथा उसे रचनाकार और उसके परिवेश से पूरी तरह विच्छिन्न कर देने के कारण रूपवाद की आलोचना हुई है। सही है कि रचना में

किसी संदेश के निहित नहीं होने से उसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं किया जा सकता है। वह भाषा का खेल भर बन जाती है और अकथनीयता का शिकार हो जाती है।

4.4.7. उपयोगी सन्दर्भ

4.4.7.1. हिन्दी की पुस्तकें

1. जैन, निर्मला. (2015). नयी समीक्षा. नयी दिल्ली . किताबघर प्रकाशन . ISBN : 978-93-83233-65-6

2. भारद्वाज, डॉ॰ मैथिली प्रसाद. (1994). पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त. चण्डीगढ़ . हरियाणा साहित्य अकादमी.

3. तिवारी, डॉ॰ रामचन्द्र. (2016). भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी-आलोचना. वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन . ISBN : 978-81-7124-764-6

4. नारंग, गोपीचन्द. (2004).संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र . नई दिल्ली. साहित्य अकादेमी. ISBN : 81-260-0798-2

5. राजनाथ. (2009). पाश्चात्य काव्यशास्त्र : नई प्रवृत्तियाँ. नई दिल्ली.

6. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. ISBN : 978-81-267-1725-5

4.4.7.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. Eagleton, Terry. (2003). Literary Theory: An Introduction. Minnesota. Blackwell Publishers Ltd. ISBN : 0-9166-1251-X

2. Habib, M. A. R. (2005) . A History of Literary Criticism: From Plato to the Present. Malden, USA. Blackwell Publishing. ISBN:13: 978-0-631-23200-1

3. Lemon, Lee T. and Reis, Marion J. (Trans.). (1965). Russian Formalist Criticism : Four Essays. Lincoln and London. University of Nebraskaa Press. ISBN- 0-8032-5460-1

4. Lodge, David & Wood, Nigel (ed).(2007). Modern Criticism and Theory : A Reader . New Delhi. Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. ISBN : 978-81-317-0721-0

5. Selden, Raman (ed.).(2008)The Cambridge History of Literary Criticism(Vol. 8): From Formalism to Poststructuralism. Cambridge. Cambridge University Press. ISBN - O 521 3OOI3 4

6. Wellek, Rene.((2005).Concepts of Literature. London. Yale University Press. ISBN-13 978-0300094633

4.4.7.3. इन्टरनेट स्रोत

www.newworldencyclopedia.org/entry/Formalism

4.4.8. अभ्यास के लिए प्रश्न

1. साहित्य में रूप और वस्तु के सम्बन्ध पर टिप्पणी लिखिए।

2. रूसी रूपवाद के विकास में श्क्लोव्स्की के योगदान स्पष्ट कीजिए।

3. रूपवाद की विभिन्न धाराओं और समूहों पर एक लेख लिखिए।

4. 'विपरिचयकरण' की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

5. रूपवाद में 'काव्य-ध्वनि' क्या है ?

6. गद्य-आख्यान में 'कहानी' और 'कथानक' की भूमिका समझाइए।

7. "रूपवाद साहित्य का विज्ञान है"। कैसे ?

8. 'नई समीक्षा' में कृति के मूल्यांकन कैसे किया जाता था ?

9. बाख़्तिन सर्कल की साहित्यिक मान्यताओं का उल्लेख कीजिए।

10. रूपवाद में शिकागो संप्रदाय की विशिष्टता की व्याख्या कीजिए।

❖❖❖